



सूरदास की भक्ति भावना का दार्शनिक आधार

Amit Kumar Singh

Research Scholar, Department of Philosophy, University of Allahabad, Uttar Pradesh, India

सारांश

महाकवि सूरदास कृष्णभक्त कवियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। उनकी भक्ति भावना अन्य सभी कृष्ण भक्त कवियों में अत्यधिक प्रखर है। उनका भक्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण स्थिर न होकर गतिशील रहा है। दास भक्ति से आरम्भ करके वे अन्ततः रागानुगा भक्ति तक पहुँचे। सूरदास की भक्ति का दार्शनिक आधार वल्लभाचार्य का 'शुद्धाद्वैतवाद' दर्शन है। वल्लभाचार्य वैष्णव वैदान्ती दार्शनिक हैं उनका शुद्धाद्वैतवाद एक प्रकार का अद्वैत ही है जिसमें शुद्ध शब्द का प्रयोग विशेषण रूप में किया गया है। शुद्धाद्वैतवाद के साथ-साथ सूरदास की भक्ति भावना पर पुष्टिमार्ग, मधवाचार्य के द्वैतवाद, निम्बार्क के द्वैताद्वैतवाद, चैतन्य महाप्रभु के अचिन्त्य भेदाभेदवाद तथा गोस्वामी हितहरिवंश के राधा वल्लभ संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रभाव स्पष्ट दिखई देता है।

मूल शब्द: सूरदास, भक्ति भावना, दार्शनिक, वल्लभाचार्य

प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों का आशय जीवन और जगत् के महत्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान ढूँढने तथा परम सत्ता के स्वरूप, आकार आदि के सम्बन्ध में चिन्तन करने से होता है। महाकवि सूरदास की गणना कवि के रूप में की जाती है लेकिन उन्होंने अपनी कविता के माध्यम से मानव मन में उत्पन्न आध्यात्मिक-प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया है। सूरदास ने अपनी कविता में जीवन और जगत् से सम्बन्धित समस्याओं पर अनेक दृष्टिकोणों से चिन्तन मनन किया है। सूरदास मूलतः एक कवि थे, दार्शनिक नहीं। उनका लक्ष्य भक्ति करना है दार्शनिक बनना नहीं। सूरदास भक्ति के अथाह सागर में डूबकर अपनी हृदयतंत्री के उन्मुक्त विचारों को व्यक्त करते हैं वही उनकी कविता बन जाती है। उनकी भक्ति की इस अविरल धारा में यदि दर्शन और चिन्तन की लहर दिखाई भी पड़ती है तो वह भक्ति से पूर्णतः सराबोर होती है। एक विद्वान आलोचक ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि "उनके सभी विचारों का निकष है भक्ति और भक्ति के परिवेश में एक विचित्र सी मिठास के साथ उन्होंने अपने परम आराध्य की लीलाओं का गान जिस उन्मुक्तता के साथ किया है उसमें दार्शनिक तत्वों की समाह्वति बड़े सहज रूप में हो गई है, ऐसा नहीं कि दार्शनिक तत्वों की विवृति के लिए उन्होंने कविता की है।"¹

सूरदास के भ्रमरगीत में भक्तितत्व और दार्शनिकता का अद्भुत मणिकांचन संयोग हुआ है। सूरदास की भक्ति को दो चरणों में बाँटा जा सकता है—एक बल्लभाचार्य से मिलने पूर्व सूरदास की भक्ति और दूसरा बल्लभाचार्य से मिलने के उपरान्त। बल्लभाचार्य से मिलने से पूर्व सूरदास की भक्ति पद्धति तुलसी की 'विनय-पत्रिका' में मिलने वाली दास्य भक्ति के समान थी। इस समय की उनकी भक्ति वैधी भक्ति या दास्य भक्ति कही जा सकती है। वैधी इसलिए कि इसमें विधि या अनुशासन का भाव है और दास्य इसलिए कि आश्रय की लघुता इसका मूल भाव है। सूर कहते हैं—

"कौन सुने यह बात हमारी।
समरथ और न देखौं तुम बिनु, कासों विथा कहौं बनवारी।"

"मेरी कौन गति ब्रजनाथ।

भजन बिनु अरु शरण नाहीं, फिरत विषयनि साथ।"

वल्लभाचार्य से मिलने के पश्चात् सूरदास की भक्ति संबंधी मान्यताओं में परिवर्तन हुआ। अब उन्होंने वैधी भक्ति के स्थान पर रागानुगा भक्ति की राह चुनी। रागानुगा भक्ति वह होती है जो शुद्ध रूप से प्रेम पर आधारित होती है; जिसमें मर्यादा या अनुशासन का कोई आग्रह नहीं होता। रागानुगा भक्ति का मूल संबंध वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद से माना गया है। शुद्धाद्वैतवाद वेदान्त दर्शन का ही एक भाग है जो शंकराचार्य के अद्वैतवाद का उस बिन्दु पर खण्डन करती है जहाँ वे जीव और जगत् को मिथ्या मानते हैं। वल्लभाचार्य जगत् को ब्रह्म का परिणाम मानते हैं, विवर्त नहीं। चूँकि सूरदास की भक्ति वल्लभाचार्य के दर्शन पर आधारित है इसलिए सर्वप्रथम वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों का परिचय पा लेना आवश्यक है।

वल्लभाचार्य ने अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत बुद्धि और हृदय के सामंजस्य पर अधिक बल दिया। वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों में वेदान्त और भक्ति का अभूतपूर्व मिश्रण मिलता है। वल्लभाचार्य भी अद्वैतवाद के समर्थक थे किन्तु उनके अद्वैतवाद को शुद्धाद्वैतवाद कहा जाता है। शुद्धाद्वैत अर्थात् माया के संबंध से रहित शुद्ध ब्रह्म का अद्वैत। इसका दूसरा अर्थ है, माया के सम्बन्ध से रहित शुद्ध ब्रह्म और जगत् का अद्वैत, जो यह बताता है कि कार्य—कारण—रूप ब्रह्म भी शुद्ध है, अर्थात् वह मायिक नहीं है।² वल्लभाचार्य का मत है कि स्रष्टि मूलतः तीन गुणों से मिलकर बनी है— सत्, चित् और आनन्द। तीनों गुण ब्रह्म के भीतर समाहित हैं। ब्रह्म इन तीनों से युक्त है, जीव में सत् और चित् गुण हैं जबकि जगत् में केवल सत् गुण है। इसका अर्थ यह हुआ कि जीव और जगत् भी ब्रह्म के अपूर्ण अंश हैं। ब्रह्म जीव और जगत् का निमित्त और उपादान दोनों ही कारण है। ब्रह्म के अतिरिक्त कोई प्रमेय नहीं है; ब्रह्म ही कारण, कार्य और स्वरूप भेद से तीन रूपों या कोटियों में परम सत्ता है। वही ज्ञान, आनन्द, काल, इच्छा, क्रिया, माया, प्रकृति रूप से पहले होता है।³ वह सभी विरुद्ध धर्मों का आश्रय है, अतः स्वरूपतः अविक्त रहकर भी अपने को ही रचता है।⁴ इस

प्रकार यह सिद्धान्त ब्रह्म से जगत् और जीव का निर्माण बिना विकृति के मानने के कारण 'अविकृत परिणामवाद' तथा अशुद्धि रूपी माया को स्वीकार न करने के कारण शुद्धाद्वैत कहलाता है। शुद्धाद्वैतवाद के आधार पर भक्ति का जो मार्ग स्थापित किया गया वह पुष्टि मार्ग है। पुष्टि का अर्थ है भगवत् कृपा। ईश्वर और जीव में पोषक-पोष्य संबंध है। जिसके अनुसार ईश्वर के अनुग्रह से ही जीव का पोषण होता है— 'पोषणंतदनुग्रहः'।¹⁶ जो व्यक्ति समझता है कि उसके कर्मों या बाह्य प्रयासों से किसी फल की प्राप्ति होती है वह अज्ञानी और झूठा है। सूरदास की स्पष्ट घोषणा है—

करि गोपाल की सब होई।

जो अपनो पुरुसारथ मानत, अति झूठो हँ सोई।।

इस मार्ग में माना जाता है कि कृष्ण की भक्ति साधन शून्यता के माध्यम से ही सम्भव है किसी प्रकार का ज्ञान, योग, कर्म उसके लिए आवश्यक नहीं है। इस मार्ग में तीन प्रकार के जीव माने गए हैं— प्रवाह जीव, मर्यादा जीव एवं पुष्टि जीव। प्रवाह जीव वे हैं जो सामान्य सांसारिक प्रवाह में पड़े हुए हैं। मर्यादा जीव वे हैं जो आध्यात्मिक सुखों की उपलब्धि चाहते हैं, किन्तु वैदिक या शस्त्रीय विधि के माध्यम से। पुष्टि जीव वे हैं जिन्होंने सब कुछ ईश्वर के अनुग्रह पर छोड़ दिया है और साधन शून्यता को स्वीकार कर लिया है। इस बिन्दु पर सूर की भक्ति साधन भक्ति से हट कर साध्य भक्ति हो जाती है। सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य होने के कारण इसी पुष्टिमार्गी भक्ति के अनुगत थे।¹⁶

सूर की भक्ति योग व कर्म-मार्ग के स्थान पर भक्ति मार्ग को तथा निर्गुण भक्ति के स्थान पर सगुण भक्ति को स्थापित करती है। वल्लभाचार्य ने भगवान के तीन रूपों पर विचार किया है— परब्रह्म श्रीकृष्ण, पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्म तथा अन्तर्यामी ब्रह्म। सूर ने अपने काव्य में ब्रह्म के इन तीन रूपों का संकेत दिया है। वे कहते हैं कि जब-जब भक्तों पर संकट आता है तो यही ब्रह्म— जिसे वेद और उपनिषद् नेति-नेति कह कर पुकारते हैं— सगुण रूप धारण करके उनके संकट को दूर करता है। तुलसी की तरह उनकी मान्यता यही थी कि मूलतः निर्गुण ईश्वर ही भक्तों के लिए अवतार लेकर सगुण हो जाता है। वे कहते हैं—

“वेद, उपनिषद् जासु को निरगुनहिं बतावैं।

भक्त बछल भगवान धरे तन भक्तिनि के पास।।”

भ्रमरगीत के अन्तर्गत उद्धव ने संसार में व्याप्त ब्रह्म की जिस सत्ता का विरोध किया और ब्रह्म के जिस सगुण रूप का अपने सिद्धान्तों के अन्तर्गत निषेध किया, गोपियों ने उसका डटकर विरोध किया और कहा कि—

सुनिहै कथा कौन निर्गुन की, रचि पचि बात बनावत।

सगुन सुमेरु प्रगट देखियत, तुम तृन की ओट दुरावत।।

गोपियाँ उस निर्गुण ब्रह्म पर विश्वास नहीं करतीं जिसका स्वरूप कभी व्यक्त नहीं होता। वे बड़ी दृढ़ता के साथ उद्धव से पूछती हैं—

रूप न रेख, बरन जाके नहिं ताको हमें बतावत।

अपनी कहौ, दरस वैसे को तुम कबहूँ हौ पावत?

मुरली अधर धरत है सो पुनि गोधन बन-बन चारत?

सूर के भ्रमरगीत में ज्ञान पर भक्ति और प्रेम की विजय स्थापित हुई

है। भ्रमरगीत में सूर ने जगत् को मिथ्या नहीं माना है और उनका एकमात्र विरोध कठोर साधना और भावना शून्य बौद्धिक ज्ञान के साथ है। इसी कारण सूर को ब्रज के कण-कण में उसी ब्रज के दर्शन होते हैं। सूर की गोपियाँ उस निर्गुण ब्रह्म का उपहास करती हैं जिसमें सगुण की रसमयता और दिव्यता का पूर्ण अभाव है उपासना की इस पद्धति से ऊब कर वे उद्धव से व्यंग्य भरे शब्दों में पूछती हैं—

निर्गुन कौन देस को वासी?

मधुकर! हँसि समुझाय, सौँह दे बूझति सौँच न हौंसि।।

सूरदास ने भ्रमरगीत में श्रीकृष्ण को परब्रह्म रूप माना है। उनके अन्तर्यामी स्वरूप को लेकर उद्धव और गोपियों में वाद-विवाद होता है। उद्धव श्रीकृष्ण के अन्तर्यामी स्वरूप को तथा गोपियाँ श्री कृष्ण के सगुण रूप के प्रेम में डूब जाना चाहती हैं। भ्रमरगीत में गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ब्रह्म का व्यंग्यात्मक उपहास करती हुई दिखती हैं। वल्लभाचार्य के समान सूर ने भी जीव को पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का अंश स्वीकार किया है। यही जीव माया से आवृत्त रहता है। प्रभु के अनुग्रह से ही जीव माया मोह आदि से मुक्त हो पाता है। सूरदास ने भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन को ही मोक्ष का साधन बताया है।

इस प्रकार सूरदास ने सिद्धान्त और व्यवहार दोनों दृष्टियों से एक ऐसे धरातल की प्रतिष्ठा की है जहाँ शुद्ध प्रेम साधना, हृदय की सच्ची पहचान और प्रिय मिलन की तीव्र लालसा सभी कुछ एक साथ भ्रमरगीत में अवस्थित हैं। जिन गोपियों को हर पल सभी दिशाओं में सिर्फ कृष्ण का मुस्कुराता हुआ मुख ही दिखता था, जिनकी समस्त क्रियाएँ कृष्णमय हो गयीं थीं, उन्हें उद्धव का निर्गुण ब्रह्म कैसे भाता। एक बार सागर का सुखमय स्पर्श पा लेने के पश्चात् नदी पुनः हिमालय की तरफ क्यों लौटना चाहेगी। इसी को ब्रह्म का साक्षात्कार कहते हैं और यही है सूरदास की भक्ति का दार्शनिक आधार।

सन्दर्भ

1. सूर काव्य: नया परिदृश्य: डॉ. हरगुलाल पृष्ठ 22।
2. मायासंबन्धरहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः।
कार्यकारणरूपं हि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम्।।—शुद्धाद्वैतमार्तण्ड
3. सविक्रियमाण एवात्मानं करोतिति वेदान्तार्थः संगतो भवति।
विरुद्ध सर्वधर्माश्रयत्वं तु ब्रह्मणो भूषणाय। — अणुभाष्य,
1/1/3
4. विस्फुलिंगा इवाग्नेहिं जडजीवा विनिर्गताः।
सर्वः पाणिपादान्तात्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखात्।। — वल्लभाचार्य का,
31
5. पोषणंतदनुग्रहः— भगवद्गीता।
6. भ्रमरगीत सार की भूमिका— आचार्य शुक्ल, पृष्ठ 73-74।